
इकाई 1 शब्द प्रमाण: परिभाषा एवं स्वरूप, साधन एवं सीमाएँ

इकाई की रूपरेखा

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 जैन दर्शन में शब्द प्रमाण
 - 1.2.1 श्रुत ज्ञान (शब्द प्रमाण) का स्वरूप
 - 1.2.2 श्रुतज्ञान का प्रामाण्य
 - 1.3.3 श्रुतज्ञान के भेद
- 1.3 सांख्य दर्शन में शब्द प्रमाण
- 1.4 योग दर्शन में शब्द प्रमाण
- 1.5 न्याय दर्शन में शब्द प्रमाण
 - 1.5.1 शब्द प्रमाण का स्वरूप
 - 1.5.2 वाक्यार्थज्ञान
 - 1.5.3 वाक्यार्थज्ञान का स्वरूप
- 1.6 मीमांसा दर्शन में शब्द प्रमाण
 - 1.6.1 पूर्वमीमांसा में शब्द प्रमाण का स्वरूप एवं भेद
 - 1.6.2 अन्विताभिधान- वाद
 - 1.6.3 अभिहितान्वयवाद
- 1.7 वेदान्त दर्शन में शब्द प्रमाण
 - 1.7.1 वेदान्तदर्शन में शब्द प्रमाण का स्वरूप एवं भेद
 - 1.7.2 शाब्दबोध के चार सहकारी कारण
 - 1.7.3 अद्वैतवेदान्त में वेद का प्रामाण्य
- 1.8 शब्द प्रमाण की प्रामाणिकता
- 1.9 सारांश
- 1.10 पारिभाषिक शब्दावली
- 1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.12 बोधप्रश्न

1.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थी ! आप एम0 ए0 हिन्दू अध्ययन कार्यक्रम के तृतीय खण्ड (शब्द, उपमान एवं अन्य प्रमाण) के इकाई सं0 01 “शब्द प्रमाण” का अध्ययन करने जा रहे हैं। जिसके अध्ययन से आप –

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

- जैन दर्शन में शब्द प्रमाण के अन्तर्गत आगम प्रमाण के स्वरूप।
- सांख्य एवं योग दर्शन में शब्द प्रमाण आप्तश्रुति है और आप्तश्रुति ही आप्तवचन या शब्दप्रमाण है।
- न्याय दर्शन में शब्द प्रमाण एवं वाक्यार्थ ज्ञान का स्वरूप।
- मीमांसा दर्शन में शब्द प्रमाण के अन्तर्गत अभिहितान्वयवाद एवं अन्विताभिधानवाद का ज्ञान।
- वेदान्त दर्शन में शब्द प्रमाण वाक्यार्थज्ञान के सहकारीकारण – आकांक्षा योग्यता सन्निधि एवं तात्पर्य का ज्ञान।
- शब्द प्रमाण की प्रामाणिकता के सन्दर्भ में न्याय एवं मीमांसा में पूर्वपक्ष एवं सिद्धान्तपक्ष का ज्ञान।

1.1 प्रस्तावना

दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम् – इस व्युत्पत्ति से दर्शन साधन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दर्शन वह शास्त्ररूप साधन है जिससे तत्त्व जाना जाता है। न्यायसूत्र के भाष्यकार वात्स्यायन के अनुसार तत्त्व का समग्र ज्ञान यदि करना है तो पहले प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और प्रमिति (प्रमा) को जानना आवश्यक है। “प्रमाता-प्रमाणं प्रमेयंप्रमितिरिति चतसृषु विधासु तत्त्वं परिसमाप्यते” (न्यायभाष्य)¹

प्रमा का 'अनधिगताबाधितविषयज्ञानत्वं प्रमात्वम्'² यह लक्षण किया गया है। अनधिगत— ऐसा विषय जो पूर्व में ज्ञात न हुआ हो। 'अबाधित'—ऐसा विषय जो दूसरे प्रमाण से (उत्तर ज्ञान से) मिथ्या सिद्ध न होने वाला हो अर्थात् बाधित न होने वाला हो। ऐसा विषय जिस ज्ञान है वह 'प्रमा' कहा जाता है। अर्थात् पूर्व में अज्ञात एवं अबाधित ज्ञान प्रमा कहलाता है। प्रमा (यथार्थज्ञान) का जो करण (साधन) है वह प्रमाण है। प्रमा (यथार्थज्ञान) के करण को प्रमाण कहते हैं। करण कहते हैं- व्यापारवत् साधकतम को। व्यापारवत् से आशय क्रिया से युक्त हो तथा साधनों में सबसे प्रमुख साधन हो उसे करण कहते हैं। जैसे लकड़ी को काटने में कुल्हाड़ी क्रिया से युक्त है तथा अन्य साधनों (हाथ इत्यादि) की अपेक्षा प्रमुख साधन है। उसी प्रकार प्रमा की प्राप्ति में जो क्रिया से युक्त हो एवं अन्य साधनों (हाथ इत्यादि) की अपेक्षा प्रमुख साधन भी हो वह प्रमाण है। मीमांसक पार्थसारथि मिश्र के अनुसार प्रमाण --

कारणदोषबाधकज्ञानरहितम् अगृहीतग्राहि ज्ञानं प्रमाणम्³ अर्थात् जिस ज्ञान में अज्ञात वस्तु का अनुभव हो, अन्य ज्ञान से बाधित न हो एवं दोष रहित हो, वही 'प्रमाण' है। भारतीय दर्शन में प्रत्येक सम्प्रदाय में प्रमाणों की संख्या भिन्न भिन्न स्वीकार की गयी है -

चार्वाक - केवल 'प्रत्यक्ष' (एकमात्र प्रमाण) –प्रत्यक्षैकप्रमाणवादितया अनुमानादेः अनडीकारेण प्रामाण्याभावात्⁴

¹ झा, महेश, न्यायसूत्र-वात्स्यायनभाष्य, चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 2013 पृ० 116

² मुसलगाँवकर, गजानन, वेदान्तपरिभाषा-प्रत्यक्ष परिच्छेद(धर्मराजाध्वरीन्द्र कृत), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ० 13

³ झा, धर्मदत्त, शास्त्रदीपिका (पार्थसारथि मिश्र कृत) 1.1.5, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2003, पृ 178.

⁴ शर्मा, उमाशंकर, सर्वदर्शनसंग्रह (माधवाचार्य कृत) -चार्वाक मत, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 पृ० 5

वैशेषिक⁵ और बौद्ध⁶ मत 'प्रत्यक्ष और अनुमान' (दो प्रमाण)

सांख्य⁷ एवं योग⁸ मत - प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम (शब्द) (तीन प्रमाण)

न्यायमत⁹ – प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द एवं 'उपमान' (चार प्रमाण)

प्राभाकर मीमांसक¹⁰ - प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान और 'अर्थापत्ति' (पाँच प्रमाण)

पौराणिक मत¹¹ - प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, सम्भव तथा 'ऐतिह्य' सात प्रमाण हैं।

उक्त सभी मतों से भिन्न पूर्वमीमांसा के भाट्टसम्प्रदाय एवं अद्वैतवेदान्त वेदान्त में छः प्रमाण स्वीकार किए हैं - 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. उपमान 4. आगम (शब्द) 5. अर्थापत्ति 6. अनुपलब्धि¹²

भारत के लगभग सभी दर्शन शब्द ज्ञान को स्वीकार मानते हैं। वैदिक परम्परा में अपौरुषेय वेदसर्वोपरि प्रमाणभूत है और परम्परा में हितोपदेशी तथा आप्त व्यक्ति के वचनों से उत्पन्न ज्ञान को प्रमाण माना है। शब्द प्रमाण को स्वतन्त्र प्रमाण मानने के विषय में जहाँ एक ओर जैन, सांख्य, योग, न्याय, मीमांसा और वेदान्त दर्शन शब्द को स्वतन्त्र प्रमाण स्वीकार करते हैं वहीं दूसरी ओर चार्वाक, वैशेषिक और बौद्ध शब्द प्रमाण को स्वीकार नहीं करते हैं।

1.2 जैन दर्शन में शब्द प्रमाण

जैन आगमिक परम्परा में ज्ञान के पाँच भेद हैं - 1. मति 2. श्रुत 3. अवधि 4. मनःपर्याय और 5. केवलज्ञान –

“मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानि ज्ञानम्”¹³ वहाँ इन पाँच ज्ञानों को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है 1-प्रत्यक्ष 2. परोक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है-(1) केवल ज्ञान और (2) नोकेवलज्ञान। नोकेवलज्ञान के पुनः दो भेद किये गये हैं--(1) अवधि और (2) मनःपर्याय। तथा परोक्षज्ञान भी दो प्रकार से वर्णित है-(1) मति और (2) श्रुतज्ञान। श्रुतज्ञान ही शब्द प्रमाण है। अर्थात् जैन दर्शन में शब्द प्रमाण परोक्ष ज्ञान के अन्तर्गत आता है।

⁵ शास्त्री, दुण्डिराज, वैशेषिक सूत्र -प्रशास्त्रपादभाष्य, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ० 156.

⁶ प्रमेयद्वित्वेन प्रमाणद्वित्वमिष्यते - स्वामी, योगीन्द्रानन्द, प्रमाणवार्तिक (आचार्य धर्मकीर्ति कृत) 2.63, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2013, पृ० 346.

⁷ दृष्टमनुमानमापतवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।

त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धिः। - शास्त्री, राकेश, सांख्यकारिका (ईश्वरकृष्ण कृत) कारिका सं० 03, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ० 58

⁸ प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि १.७ - श्रीवास्तव, सत्यनारायण, योगसूत्र-व्यासभाष्य, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2009, पृ० 47.

⁹ यथार्थानुभवश्चतुर्विधः प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात्। तत्करणमपि चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् - भार्गव, दयानन्द, तर्कसंग्रह (अन्नम्भट्ट), मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ० 112.

¹⁰ मिश्र, मण्डन, मीमांसा दर्शन-प्रमाण परिच्छेद, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 1955, पृ० 377

¹¹ पूर्ववत्

¹² तानि च प्रमाणानि षट् - प्रत्यक्षानुमानोपमानागम-अर्थापत्तिअनुपलब्धिभेदात् - वि० शास्त्री, केशवलाल (अनु०), वेदान्तपरिभाषा (धर्मराजाध्वरीन्द्र कृत) चौखम्भा संस्कृत सीरीज ओफिस, दिल्ली, 2012, पृ० 06

¹³ तत्त्वार्थाधिगमसूत्र १.४

1.2.1 श्रुत ज्ञान (शब्द प्रमाण) का स्वरूप

जैन दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य विद्यानन्द ने श्रुतज्ञान का स्वरूप को बताते हुए कहा है कि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम विगमविशेष से श्रवण करना श्रुत कहा है। इनके मत से जो वाच्य अर्थ आप्तवाक्य द्वारा सुना जा चुका है, वह अपने और वाच्यार्थ को जानने वाला आगमज्ञानरूप श्रुतज्ञान है। जैन दर्शन में श्रुत शब्द के अनेक अर्थ होने पर भी श्रुतज्ञान के अर्थ में निहित है। यथा—

श्रुतेऽनेकार्थतासिद्धे ज्ञानमित्यनुवर्तनात्
श्रवणं हि श्रुतज्ञानं न पुनः शब्दमात्रकम्॥¹⁴

आशय यह है कि श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम विशेष की अपेक्षा से उत्पन्न हुआ और अविनाभावी अनेक अर्थान्तरों का निरूपण वाला ज्ञान श्रुतज्ञान है।

जैन दर्शन में श्रुतज्ञान अर्थात् शब्द प्रमाण को आगम भी कहा गया जो जैन मुनियों के द्वारा कहा गया है अथवा जैन ग्रन्थों में निबद्ध है —

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्
निःसंदेहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः।¹⁵

(जो न्यूनता बिना, अधिकता बिना, विपरीता बिना यथातथ्य वस्तुस्वरूप को निःसंदेह रूप से जानता है उसे आगमवन्तों का ज्ञान कहते हैं)

वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यादि
सम्यक्श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठानभेदरत्नत्रयस्वरूपं यत्र प्रतिपाद्यते
तदागमशास्त्रं भण्यते।¹⁶

(वीतराग सर्वज्ञ देव के द्वारा कहे गये षड्द्रव्य व सप्त तत्त्व आदि का सम्यक्श्रद्धान व ज्ञान तथा व्रतादि के अनुष्ठान रूप चारित्र, इस प्रकार भेद रत्नत्रय का स्वरूप जिसमें प्रतिपादित किया गया है उसको आगम या शास्त्र कहते हैं।)

1.2.2 श्रुतज्ञान का प्रामाण्य

जैनाचार्यों ने श्रुतज्ञान को प्रमाण न मानने वाले चार्वाक, बौद्ध आदि दार्शनिकों का खण्डन किया है। उनका कहना है कि इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ प्रत्यक्ष ज्ञान जैसे अपने और अपने विषय के जानने में संवादी होने के कारण भी प्रमाण रूप माना जाता है। उसी प्रकार स्व और अर्थ के जानने में सम्वादी होने के कारण श्रुतज्ञान भी प्रमाण रूप है। तथा जैन दार्शनिकों का यह भी कहना है कि चार्वाकों और बौद्धों के अपने शास्त्र हैं और उनको पढ़कर उनको जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान से भिन्न ज्ञान नहीं है। उनका यह भी कहना है कि इस शब्दजन्य श्रुतज्ञान के अभाव में गूँगे और वाग्मी में कोई विशेषता नहीं रहेगी क्योंकि मूर्ख को पण्डित बताने में या बालक को उतरोत्तर ज्ञानशाली बताने में शब्द ही प्रधान कारण है। जैनाचार्यों का कहना है कि कहीं कहीं विसम्वाद हो जाने के कारण यदि सभी श्रुतज्ञानों को अप्रमाण ठहराया जायेगा तो सीप में चांदी

¹⁴ तत्त्वार्थ श्लो. 1/20/1

¹⁵ रत्नकरंड श्रावकाचार - श्लोक 42

¹⁶ रत्नकरंड श्रावकाचार - श्लोक 42

का ज्ञान होना, एक चन्द्रमा को दो जान लेना आदि प्रत्यक्षों के अप्रमाण हो जाने से सभी प्रत्यक्ष अप्रमाण हो जायेंगे, यह ठीक है कि प्रत्यक्षाभास के समान श्रुताभास भी मान लिया जाय, किन्तु उनका श्रुतज्ञान को एकदम अप्रमाण ठहराना कदापि उचित नहीं है। भारत के सभी धर्म और दर्शन श्रुत — आगम ज्ञान को प्रमाण मानते हैं। वैदिक परम्परा में अपौरुषेय वेद सर्वोपरि प्रमाणभूत हैं और श्रमण परम्परा में सर्वज्ञ, वीतरागी एवं हितोपदेशी व्यक्ति के वचनों से उत्पन्न ज्ञान को प्रमाण माना है। व्यक्ति के निर्दोष और पूर्ण ज्ञानी होने से उसके द्वारा प्रतिपादित वचनों में किसी भी प्रकार की त्रुटि या भूल नहीं हो सकती। अतः प्रत्यक्ष समान आगम अथवा श्रुतज्ञान को भी प्रमाण माना गया है।

इस प्रकार जैन दर्शन में श्रुतज्ञान या आगम का बहुत महत्त्व है। यह श्रुतज्ञान अमृत समान हितकारी है, विषय-वेदना से सन्तप्त प्राणी के लिए परम औषधि है। आचार्य कुन्दकुन्द ने इसका महत्त्व बताते हुए कहा है-

**जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥¹⁷**

जैन दर्शन में आगम को अनादि कहा गया है। इसके महत्त्व के विषय में जम्बूद्वीप अधिकार ग्रन्थ में कहा गया है कि पूर्व व अंग रूप भेदों में विभक्त, यह श्रुतज्ञान-प्रमाण देवेंद्रों व असुरेंद्रों से पूजित, अनंत सुख के पिंड रूप मोक्ष फल से संयुक्त, कर्मरूप पटल के मल को नष्ट करनेवाला, पुण्य पवित्र, शिव, भद्र, अनंत अर्थों से संयुक्त दिव्य नित्य, कलि रूप कलुष को दूर करने वाला, निकाचित, अनुत्तर, विमल, संदेहरूप अंधकार को नष्ट करने वाला, बहुत प्रकार के गुणों से युक्त, स्वर्ग की सीढ़ी, मोक्ष के मुख्य द्वारभूत, निर्मल, एवं उत्तम बुद्धि के समुदाय रूप, सर्व के मुखसे निकला हुआ, पूर्वापर विरोध रूप दोष से रहित विशुद्ध अक्षय और अनादि कहा गया है -

**देवासुरिदमहिय अणंतसुहपिंडमोक्खफलपउरं।
कम्ममलपडलदलणं पुण्ण पवित्तं सिवं भदं ॥**

**पुव्वंगभेदभिण्णं अणंतअत्थेहिं सजुदं दिव्वं।
णिच्चं कलिकलुसहरं णिकाचिदमणुत्तरं विमलं ॥**

**संदेहतिमिरदलणं बहुविहगुणजुत्तंसग्गसोवाणं।
मोक्खग्गदारभूदं णिम्मलबुद्धिसंदोहं ॥**

**सव्वणहुमुहविणिग्गयपुव्वावरदोसरहिदपरिसुद्धं।
अक्खयमणादिणिहणं सुदणाणपमाणं णिद्धिं ॥¹⁸**

1.2.3 श्रुतज्ञान के भेद

श्रुतज्ञान के मूल दो भेद हैं- द्रव्यश्रुत और भावश्रुत। आस के उपदेश तथा द्वादशांगवाणी को द्रव्यश्रुत और उससे होने वाले ज्ञान को भावश्रुत कहते हैं। इसी कारण द्रव्यश्रुत को ग्रन्थरूपश्रुत

¹⁷ दंसणपाहुड गाथा 17

¹⁸ जंबूद्वीव-पण्णत्तिसंगहो अधिकार 13/80-83

और भावश्रुत को ज्ञानरूप श्रुत भी कहते हैं। ग्रन्थरूपश्रुत के मूल दो भेद हैं—अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य। साक्षात् तीर्थकर जिस अर्थ को अपनी पवित्र वाणी से प्रकट करते हैं और गणधर जिसका सूत्र रूप में ग्रन्थन करते हैं उसे “अंगप्रविष्ट” कहते हैं। आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकदशांग, अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण विपाकसूत्र और दृष्टिवाद आदि के भेद से बारह प्रकार का है तथा जो गणधर परम्परा के आचार्यों के द्वारा शिष्य के हितार्थ जो रचा जाता है, वह “अंगबाह्य” है। वह दशकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प व्यवहार, कल्पाकल्प, कहाकल्प आदि के भेद से अनेक प्रकार का है। यह अंगबाह्य अंगप्रविष्ट के समान ही प्रमाण रूप है, क्योंकि गणधर परम्परा के आचार्यों ने अंगप्रविष्ट ग्रन्थों को आधार बनाकर ही कालदोष से कम आयु, बल और बुद्धि वाले शिष्यों के हितार्थ दशकालिक आदि ग्रन्थों की रचना की है। इसलिए इन ग्रन्थों की उतनी ही प्रामाणिकता है, जितनी गणधरों और तीर्थकरों के द्वारा रचित सूत्रों की है, क्योंकि ये अर्थ की दृष्टि से सूत्र ही हैं, जैसे क्षीरसागर से घड़े में भरा हुआ जल क्षीरसागर के जल से भिन्न नहीं होता है वैसे ही अंगबाह्य अंगप्रविष्ट से भिन्न नहीं है।

1.3 सांख्य दर्शन में शब्द प्रमाण

सांख्यदर्शन का मुख्य विवेच्य प्रकृति और पुरुष है। प्रकृति और प्रमेय हैं। इसी आधार इस दर्शन को प्रमेय विद्या का प्रतिपादक माना जाता है। प्रमेयसिद्धि: प्रमाणाद्धि अर्थात् प्रमेय की सिद्धि प्रमाण से ही होती है। बिना प्रमाण के प्रमेय की सिद्धि नहीं हो सकती है। इन तत्त्वों की सिद्धि में प्रमाण हैं। सांख्य दर्शन में इन तत्त्वों को सिद्ध करने के लिए तीन प्रमाण स्वीकार किये गये हैं। वे प्रमाण हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्तवचन (शब्द प्रमाण)। प्रमाणों की संख्या न तीन से अधिक है और न ही कम। इसीलिए अधोलिखित कारिका में कहा गया है-त्रिविधंप्रमाणमिष्टम्। अर्थात् तीन प्रमाण स्वीकृत हैं –

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणासिद्धत्वात्।

त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि।¹⁹

(कारिकार्थ : प्रमाण से ही प्रमेय की सिद्धि होती है और (अन्य) सभी प्रमाणों के असिद्ध होने के कारण (सांख्य दर्शन में) तीन प्रमाण स्वीकृत हैं प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्तवाक्य) यहाँ सांख्यकारिका में शब्द प्रमाण के लिए ही आप्तवचन शब्द का प्रयोग किया गया है।

महर्षि कपिल के अनुसार आप्त व्यक्ति के उपदेश वचन को शब्द प्रमाण कहा जाता है - आप्तोपदेशः शब्दः।²⁰ विज्ञान भिक्षु 'आप्ति' को योग्यता के अर्थ में स्वीकार करते हैं। विज्ञानभिक्षु योग्य शब्द से उत्पन्न ज्ञान को शब्द प्रमाण और कारण भूत शब्द को प्रमाण कहते हैं। विज्ञानभिक्षु के शिष्य भावागणेश 'स्वकर्मण्यभियुक्तो रागद्वेषरहितो ज्ञानवान् शीलसम्पन्नः'²¹ को आप्त कहते हैं। उन आप्तों के वचनों का शब्द कहा जाता है। ईश्वरकृष्ण 'आप्तश्रुतिराप्तवचनं तु'²² के रूप में शब्द प्रमाण को स्पष्ट करते हैं अर्थात् श्रुति से प्राप्त आप्तश्रुति है और आप्तश्रुति ही आप्तवचन या शब्दप्रमाण है। इसका तात्पर्य है कि श्रुतिवचनों

¹⁹ सांख्यकारिका 4

²⁰ सांख्यसूत्र १।६६

²¹ तत्त्वयाथार्थ्यदीपन सं.रा.शं. भट्टाचार्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी पृ 23

²² सांख्यकारिका 4

को सांख्यदर्शन में शब्द प्रमाण माना गया है। श्रुति से प्राप्त आप्तश्रुति है और आप्तश्रुति ही आप्तवचन या शब्दप्रमाण है। इसका तात्पर्य है कि श्रुतिवचनों को सांख्यदर्शन में शब्द प्रमाण माना गया है।

श्रुति क्या है ? सामान्य रूप से श्रुति पद का प्रयोग वेद के लिए किया जाता है। वेद के पर्याय वदों में श्रुति का भी उल्लेख है। वेद में प्रतिपादिक ज्ञान का प्रवाह श्रवण परम्परा से ही दीर्घ काल तक हुआ है, इसीलिए वेद को श्रुति कहते हैं। श्रुति पद की व्युत्पत्ति है - श्रूयते इति श्रुतिः अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय से ग्राह्य वाक्य श्रुति है। यहाँ श्रुति को वाचस्पति मिश्र 'वाक्यजनितं वाक्यार्थज्ञानम्'²³ कहते हैं और इसे (श्रुति प्रमाण को) स्वतः प्रमाण कहते हैं। यह स्वतः या स्वतंत्र प्रमाण 'अपौरुषेयवेद वाक्यजनितत्वेन सकलदोषाशंका विनिर्मुक्तेत्युक्तं'²⁴ होता है। न केवल सकल दोषाशंका रहित होने से अपौरुषेय वेद वाक्य जनित ज्ञान स्वतः प्रमाण होता है अपितु वेदमूलक स्मृति, इतिहास पुराणादि के वाक्य भी शब्द प्रमाण होते हैं। शब्द प्रमाण की यह स्वतः प्रमाणता शब्द की अपना ज्ञान कराने की शक्ति के कारण है।

1.4 योग दर्शन में शब्द प्रमाण

योग दर्शन में तीन प्रमाण स्वीकृत हैं - 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. आगम (शब्द)-प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि²⁵ शब्द के लिए आगम शब्द का प्रयोग किया है। व्यास भाष्य (1.1.7) में लिखित है कि अपने बोध का सम्प्रेषण करने के लिए तत्त्वज्ञानी अर्थात् यथार्थदृष्टा आप्त पुरुषों द्वारा शब्द के माध्यम से जो उपदेश किया जाता है, वह आगम प्रमाण है। जिस आगम का वक्ता अश्रद्धेय बात कहने वाला तथा (अभिधीयमान) पदार्थ का प्रत्यक्ष या अनुमान न कर सकने वाला हो, वह आगम भ्रष्ट (अप्रामाणिक) होता है। मूलवक्ता के दृष्टानुमितार्थ होने पर आगम होता है ॥ - आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वार्थः परत्र स्वबोधसङ्क्रान्तये शब्देनोपदिश्यते। शब्दात्तदर्थविषया वृत्तिः श्रोतु- रागमः। यस्याश्रद्धेयार्थी वक्ता न दृष्टानुमितार्थः स आगमः प्लवते। मूलवक्तरि तु दृष्टानुमितार्थं निविप्लवः स्यात् ॥²⁶

यहाँ भाष्य में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि किस प्रकार का शब्द प्रमाण कहा जाता है तथा किस प्रकार के शब्द को अप्रामाणिक कहा जाता है -यस्याश्रद्धेयार्थी वक्ता न दृष्टानुमितार्थः, स आगमः प्लवते जिस आगम का वक्ता पदार्थ के प्रत्यक्ष या अनुमित ज्ञान से शून्य और इसीलिए अश्रद्धेयार्थी होता है, वह आगम नाम की वृत्ति प्लुत होती है अर्थात् सदोष होती है अतः इस प्रकार के शब्द को अप्रामाणिक कहा जाता है। उसे प्रमाण की कोटि में अन्तर्भावित नहीं किया जा सकता - प्रमाणवृत्तिजननासमर्थ इत्यर्थः।²⁷

मूलवक्तरि तु दृष्टानुमितार्थं निविप्लवः स्यात् - आगम-वृत्ति, सुनने वाले की बुद्धि में बनती है; किन्तु बनती है कहनेवाले के कथन से श्रोता उस वृत्ति का निमित्त नहीं होता, इसलिए इस वृत्ति का मूल कारण अन्य वृत्तियों से असमान अर्थात् प्रमाता से भिन्नस्थानीय होता है। इसलिए इसमें आये हुए 'मूल' शब्द को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए इसीलिए 'वक्तरि' के पहले

²³ सांख्यकौमुदी,सांख्यकारिका 5

²⁴ सांख्यकौमुदी,सांख्यकारिका 5

²⁵ पतंजलिसूत्र 1.1.7

²⁶ पतंजलिसूत्र-व्यासभाष्य 1.1.7

²⁷ योगवार्तिक पृ० ३२

भाष्यकार ने 'मूल' शब्द लगा दिया है। अन्य प्रमाणों में ज्ञान की प्रामाणिकता के विषय में प्रमाता उत्तरदायी होता है जबकि 'आगम-प्रमाण' में प्रमाता के स्थान पर 'मूलवक्ता' उत्तरदायी होता है। इसीलिए कहा गया है कि जब 'मूलवक्ता' ठीक से अर्थ को प्रत्यक्षीकृत या अनुमित किये होता है, तभी वह आगम निर्दोष एवं शुद्ध होता है। वाचस्पतिमिश्र ने यहाँ पर 'मूलवक्ता' शब्द से ईश्वर का ग्रहण किया है - **मूलवक्तरि हि तत्रेश्वरो दृष्टानुमितार्थः।**²⁸

1.5 न्याय दर्शन में शब्द प्रमाण

1.5.1 शब्द प्रमाण का स्वरूप

आप्त = जो व्यक्ति किसी विषय का जाना-माना ज्ञाता हो, और जो किसी बाह्य प्रभाव से अपने मत को झुठला नहीं सकता, ऐसे आप्त पुरुष के वचन प्रामाणिक होते हैं। और ये वचन दो प्रकार के होते हैं - दृष्ट विषयों से सम्बद्ध और अदृष्ट विषयों से सम्बद्ध। आप्त जनों के उपदेश में इतना सामर्थ्य होता है कि कहे शब्द के अर्थ की प्रतीति श्रोता को हो जाती है -

आप्तोपदेशः शब्दः। स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात् ॥²⁹

आप्तोपदेशसामर्थ्याच्छब्दादर्थसम्प्रत्ययः ॥³⁰

न्यायभाष्यकार वात्स्यायन के अनुसार जिसने यथार्थ वस्तु को देखा हो वह आप्त है चाहे वह ऋषि हो आर्य हो या म्लेच्छ -

साक्षात्करणमर्थस्याऽऽप्तिस्तथा प्रवर्तत इत्याप्तः।

ऋष्यार्यम्लेच्छानां समानं लक्षणम्।³¹

न्यायदर्शन के प्रकरण ग्रन्थ तर्कसंग्रह के अनुसार आप्त व्यक्ति के वाक्य को शब्द कहते हैं। आप्त का अर्थ है- यथार्थवक्ता (जो रागद्वेषादि से भी असत्य न बोले)। पदों के समूह को वाक्य कहते हैं। जैसे 'गामानय' यह सुबन्त-तिडन्त पदसमूह वाक्य है। पद कहते हैं शक्ति को, अर्थात् जिसमें शक्ति होती है वह पद है। इस पद से यह अर्थ समझना चाहिए इस प्रकार के ईश्वर के सङ्केत कोशक्ति कहा जाता है। कोई भी पद शक्ति के कारण ही अर्थ का बोध कराता है। प्रत्येक पद के आदि में ईश्वरसंकेतरूप शक्ति है। इस पद से यह अर्थ जानें, यह ईश्वरसंकेत है। उस संकेत से हम लोग विशेष अर्थ में विशेष शब्द का प्रयोग करते हैं, यह नैयायिक-मत है। 'घटपद से घटरूप अर्थ समझना चाहिये, इस प्रकार की ईश्वरेच्छा ही शक्ति है- **आप्तवाक्यं शब्दः। आप्तस्तु यथार्थवक्ता। वाक्यं पदसमूहः। यथा एक गामानयेति शक्तं पदम्। अस्मात् पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरसङ्केतः शक्तिः।**³²

शक्ति का अर्थ है-'स्मृति के अनुकूल पद और अर्थ का सम्बन्ध होना' यही शक्ति का लक्षण है। शक्ति के समान लक्षणा भी पद में रहने वाली (वृत्ति) है। अब लक्षणा क्या है? तो कहते हैं कि शक्य-सम्बन्ध लक्षणा है। शक्तिसम्बन्ध से उपस्थापित अर्थ का अर्थान्तर से सम्बन्ध लक्षणा है। यह तीन प्रकार की है—1. जहत् लक्षणा, 2 अजहत् लक्षणा और 3. जहत्-अजहत्

²⁸ तत्त्ववैशारदी पृ० ३४

²⁹ न्यायसूत्र १।१।७

³⁰ न्यायसूत्र २।१।८

³¹ न्यायसूत्र वात्स्यायनभाष्य १.१.७

³² तर्कसंग्रह शब्दप्रमाणखण्ड पृ २५

लक्षणा। गङ्गायां घोषः= गंगा के तीर में घर है। यहाँ पर 'गंगा' पद का वाच्य अर्थ प्रवाह है, (प्रवाह में घर नहीं हो सकता) अतः प्रवाह का सम्बन्ध 'तीर' के साथ है, अतः गंगापद का अर्थ यहाँ तीर हुआ। तात्पर्य की अनुपपत्ति= संगति नहीं बैठना ही लक्षणा का बीज = कारण है। अतः 'गङ्गायां घोष' ऐसा कहने पर, गंगा=प्रवाह, में घर का होना अनुपपन्न होता है, तब गंगापद का अर्थ तीर, लक्षणा द्वारा सिद्ध होगा। जहाँ शक्यार्थत्याग के बिना लक्ष्यार्थ की प्रतीति होती है, वह अजहत् लक्षणा है। जैसे छत्रधारी जा रहे है। यहाँ कुछ बिना छत्र के भी जा रहे होते हैं, तब भी समूह में छत्रधारी शब्द का प्रयोग हुआ। यहाँ शक्यार्थ छत्रधारी के साथ लक्ष्यार्थ-अछत्रधारी के भी गमन का बोध जो होता है, वह अजहत् लक्षणा से होता है। सोऽयमधूः = यह वही अश्व है। इस स्थल में जहत् अजहत् लक्षणा है। जहदजहल्लक्षणा में कुछ अर्थ छोड़ दिया जाता है तथा कुछ अर्थ नहीं छोड़ा जाता है।

1.5.2 वाक्यार्थज्ञान

वाक्यार्थ के ज्ञान में तीन हेतु हैं :- 1.आकांक्षा 2.योग्यता और 3.सन्निधि - आकाङ्क्षायोग्यतासन्निष्टयि वाक्यार्थज्ञाने हेतुः।³³

1. आकांक्षा :- पदस्य पदान्तरव्यतिरेक- प्रयुक्ताऽन्वयाऽनुभावकत्वमाकाङ्क्षा।³⁴
एक पद का दूसरे पद के अभाव से जहाँ शाब्दबोध की जनकता नहीं होती है वह आकांक्षा है। जैसे—'गौः अश्वः पुरुषः हस्ती' यह पदसमूह परस्पर आकांक्षादि से रहित है, अतः प्रमाण नहीं है।
2. योग्यता -अर्थाबाधो योग्यता।³⁵अर्थ का बाधित नहीं होना योग्यता है। इस प्रकार आकांक्षा आदि से रहित वाक्य अप्रमाण होते हैं जैसे वहिना सिञ्चति = आग से सींचता है। यह वाक्य प्रमाण नहीं है, क्योंकि यहाँ योग्यता का अभाव है। अर्थात् आग से सींचने का कार्य नहीं होने से सिंचन-योग्यता का अभाव है, अतः ऐसे वाक्य प्रमाण नहीं होते।
3. सन्निधि -पदानाम- विलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः। अर्थात् एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ का सम्बन्ध-बाध न होना योग्यता है। पदों का विलम्ब किये बिना उच्चारण करना सन्निधि है। प्रहर-प्रहर में, एक साथ उच्चारित न किये गये 'गाम् आनय' इत्यादि पद भी प्रमाण नहीं है, सान्निध्य के अभाव से। सान्निध्य = सामीप्य, यदि परस्पर उच्चारित शब्दों में न हो तो वह वाक्य प्रमाण नहीं होता।

1.5.3 वाक्यार्थज्ञान का स्वरूप

वाक्य के अर्थ का ज्ञान ही 'शाब्दज्ञान' है। शाब्दज्ञान का असाधारणकारण शब्द है - वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम्। तत्करणं तु शब्दः।³⁶

शाब्दबोध का क्रम इस प्रकार है- चैत्रो ग्रामं गच्छति—चैत्र गांव जाता है, यहाँ पर ग्रामकर्म वाले गमन के अनुकूल वर्तमानकालिककृति (प्रयत्न) वाला चैत्र है, ऐसा शाब्दबोध होता है। ग्रामम् में द्वितीयाविभक्ति का अर्थ कर्मत्व है। गम् धातु का अर्थ गमन है, और अनुकूलत्व,

³³ तर्कसंग्रह शब्दप्रमाणखण्ड पृ २५

³⁴ तर्कसंग्रह शब्दप्रमाणखण्ड पृ २५

³⁵ तर्कसंग्रह शब्दप्रमाणखण्ड पृ २५

³⁶ तर्कसंग्रह शब्दप्रमाणखण्ड पृ २५

संसर्ग= सम्बन्ध की मर्यादा से भासित होता है। गच्छति पद में वर्तमानत्व अर्थ लट् लकार का है। आख्यात = तिङ् का अर्थ कृति है, और उसका सम्बन्ध संसर्ग की मर्यादा से प्रकाशित है।

रथः गच्छति = रथ जाता है। इस वाक्य से 'गमन के अनुकूल व्यापार वाला रथ है', यह शाब्दबोध होता है। स्नात्वा गच्छति -स्नान कर जाता है। यहाँ पर 'गमन के प्रागभाव से युक्त काल में स्नान करने वाला, गमन के अनुकूल वर्तमानकालिक कृतिवाला' ऐसा शाब्दबोध होता है। 'स्नात्वा' में क्त्वाप्रत्यय का अर्थ कर्त्ता और पूर्वकालीनत्व = 'पूर्वकाल में होना' यह है। अन्य स्थान में इसी प्रकार वाक्यार्थबोध मानना चाहिए।

नैयायिक शाब्दबोध करते समय प्रथमान्तार्थ = कर्त्ता को मुख्य मानते हैं, वे तिङ् का अर्थ कृति मानते हैं। नैयायिकों को अचेतनकर्त्ता वाले स्थल में व्यापार अर्थ की प्रधानता माननी पड़ती है। जैसे कि रथो गच्छति में ऊपर बताया गया है वैयाकरण शाब्दबोध में सर्वत्र व्यापार=क्रिया को, मुख्य मानते हैं। उनके मत में आख्यातार्थ कर्त्ता कर्म संख्या व काल होता है।

1.6 पूर्वमीमांसा दर्शन में शब्द प्रमाण

1.6.1 पूर्वमीमांसा में शब्द प्रमाण का स्वरूप एवं भेद

मीमांसक अनुमान प्रमाण के अनन्तर शब्द प्रमाण को स्वीकार करते हैं। मीमांसकों के मत में शब्द प्रमाण सभी प्रमाणों की अपेक्षा गुरुत्त्वपूर्ण है। आस वाक्य ही शब्द है। किसी भी वाक्य के अन्तर्गत पदों के अर्थबोध से अनन्तर प्रत्यक्ष के द्वारा अज्ञात अर्थ का ज्ञान होता है, वह शब्द ज्ञान कहा जाता है। कहा गया है-

तत्र तावत् पदैर्जातैः पदार्थस्मरणे कृते।

असन्निकृष्ट वाक्यार्थज्ञानं शाब्मितीर्यते ॥³⁷

शब्द ज्ञान में पदार्थ ही करण है, वाक्यार्थ का अवबोध फल है। शब्द प्रमाण दो प्रकार का है- पौरुषेय और अपौरुषेय। मीमांसकों के मत में आस वाक्य पौरुषेय है, वेदवाक्य अपौरुषेय है - तच्च शाब्दं द्विविधं पौरुषेयमपौरुषेयं च। तत्राप्तवचः पौरुषेयं, वेदवचोऽपौरुषेयम्।³⁸ प्रभाकर में दोष होते हैं, उससे पौरुषेय वाक्य प्रमाण पदवी को प्राप्त नहीं करते। इसीलिए कहा जाता है-

अपौरुषेये वेदे तु पुरुषस्पर्शसन्नतः।

कल्यो न विशङ्क्येत तत् कुतो व्यभिचारिता ॥³⁹

इसका अर्थ है- पुरुष दोष अपौरुषेय वेद में शङ्कित होते हैं, उससे अपौरुषेय वेद का ही प्रामाण्य है, व्यभिचारों के अभाव के कारण।

शब्द- प्रमाण पर मीमांसकों का विशिष्ट विवेचन प्राप्त होता है। पदों से निर्मित उन वाक्यों को शब्द प्रमाण कहते हैं जिनसे हमें परोक्षार्थ ज्ञान मिलता है तथा जिन्हें हम आस साधन से पाते हैं। ये वाक्य पौरुषेय (आस पुरुषों के द्वारा प्रयुक्त) तथा अपौरुषेय (वेदवाक्य) हो सकते हैं। पौरुषेय वाक्य तो यथार्थवक्ता के द्वारा प्रयुक्त होने पर ही प्रामाणिक होते हैं किन्तु अपौरुषेय वाक्य

³⁷ मानमेयोदय-शब्दपरीक्षा ९१३

³⁸ मानमेयोदय-शब्दपरीक्षा

³⁹ मानमेयोदय ९१०

स्वयंसिद्ध प्रमाण हैं। पदों का अर्थ तो हमें पूर्व- ज्ञात रहता है जिससे उसे प्रमाण मानने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु उन ज्ञात पदों के अर्थों के संबन्ध पर आश्रित वाक्यार्थ का ज्ञान हमें किसी अन्य साधन से नहीं हो सकता, अतः पृथक् शब्द-प्रमाण मानने की आवश्यकता है। इस वाक्यार्थ के विषय में मीमांसकों का विशेष अभिनिवेश है।

वाक्य का आरम्भ वस्तुतः वर्णों से ही होता है। प्रत्येक शब्द वर्णात्मक होता है। ये वर्ण (जों पद के अवयव हैं) अपना पृथक् अर्थ नहीं देते, केवल श्रुतिगोचर होते हैं। इनका श्रुतिविषय होना ही पद के अर्थज्ञान का साधन है। किन्तु हम जो किसी शब्द के अर्थ का ज्ञान पाते हैं उसका कारण वर्णों की अर्थवत्ता ही है जिसे अर्थापत्तिप्रमाण से सिद्ध किया जा सकता है (= अन्यथा शब्दार्थ की अनुपपत्ति होगी)। प्रत्येक वर्ण का प्रत्यक्ष स्वयं समाप्त होकर वर्ण-संस्कार को छोड़ता जाता है। प्रत्येक पूर्ववर्ण के संस्कारों को लेकर अन्तिम वर्ण तक हम जैसे ही पहुँचते हैं हमें शब्दार्थ का ज्ञान हो जाता है। यदि पूरा शब्द सुनने के बाद भी श्रोता को अर्थबोध नहीं हो तो समझना चाहिए कि अर्थज्ञान के लिए आवश्यक कुछ सहकारियों की कमी श्रोता में है। शब्दशक्ति का आरंभ चूँकि वर्णों की पृथक्-पृथक् शक्तियों से होता है अतः ये शक्तियाँ ही शब्दज्ञान का साक्षात् कारण है।

मीमांसकों का यह सिद्धान्त है कि सभी शब्दों में अर्थबोध कराने की स्वाभाविक शक्ति है— श्रोता बोध करें या न करें। इसे जैमिनि ने अपने सुप्रसिद्ध औत्पत्तिक-सूत्र (11115) में स्पष्ट किया है— **औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन संबन्धः।**⁴⁰ श्रोता शब्द-श्रवण के बाद भी तबतक उसके अर्थ का ग्रहण नहीं कर सकेगा जबतक उसे इस सम्बन्ध का ज्ञान न हो कि अमुक शब्द में अमुक अर्थ बोध कराने की शक्ति है। किन्तु श्रोता के अज्ञान का शब्दार्थ-संबन्ध पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता-शब्द में तो अर्थबोध की स्वाभाविकता शक्ति रहेगी ही। शब्दार्थ-संबन्ध न तो परंपरा पर निर्भर है, न ईश्वरादि की इच्छा पर (जैसा कि नैयायिक लोग मानते हैं)। केवल व्यक्तिबोधक नामों के विषय में हम परम्परा पर निर्भर करते हैं। इस सिद्धान्त का साक्षात् प्रभाव हम वैदिक विधियों के स्वतः प्रामाण्य पर देख सकते हैं। इन विधियों के अनुष्ठान से ही हमें अन्यथा अज्ञातव्य फलों की प्राप्ति होती है। नैयायिकों के विपरीत, मीमांसक लोग शब्द को नित्य मानते हैं। नित्य होने पर भी शब्द को प्रकाशित करने की आवश्यकता होती है जो उच्चारण करनेवाले पुरुष के प्रयत्न से संभव है। नैयायिक पुरुष प्रयत्न को जहाँ शब्द का उत्पादक समझते हैं, मीमांसक इसे शब्द का प्रकाशक मात्र मानते हैं।

वाक्यार्थ-विषयक दो परस्पर भिन्न मत मीमांसकों में पाये जाते हैं –

1.6.2 अन्विताभिधान-वाद

प्रभाकर का मत है कि विधायक वाक्यों में रहनेवाले शब्दों से ही शब्दार्थ-ज्ञान होता है, पृथक् शब्द का ज्ञान नहीं होता। किसी उत्तमवृद्ध के द्वारा प्रयुक्त - गामानय, अश्वं बधान (गाय को ले आओ, घोड़े को बाँध दो) इत्यादि-वाक्यों को सुनकर जब मध्यमवृद्ध र कार्य में प्रवृत्त होता है तब सामने बैठा बालक उत्तमवृद्ध के शब्दों को सुनकर तथा मध्यमवृद्ध के कार्यों को देखकर अनुमान तथा अर्थापत्ति प्रमाण से जान लेता है कि गौ तथा अश्व शब्दों का अमुक अर्थों के साथ संबन्ध है। इस प्रकार किसी विधिवाक्य में अन्य तथ्यों के साथ संबद्ध रहने पर ही शब्दार्थों का बोध शब्दों से होता है। प्रभाकर के इस सिद्धान्त को **अन्विताभिधान- वाद** (विधिवाक्य

⁴⁰ मानमेयोदय-शब्दपरीक्षा पृ १३४

में परस्पर अन्वय से युक्त पदों का अर्थबोध होना) कहा जाता है। तदनुसार 'गामानय' में गाम्-पद का श्रवण करते ही यह बोध होता है कि गो-जाति के साथ कुछ क्रिया होनी है, यह क्रिया 'आनय' के द्वारा प्रकाशित होती है -वाच्य एव वाक्यार्थ इत्यन्विताभिधानवादिनः॥⁴¹

सकलपदान्तरपूर्तावितरपदार्थैः समन्वितं स्वार्थम्।
सर्वपदानि वदन्तीत्यन्येषामन्विताभिधानमतम् ॥⁴²

1.6.3 अभिहितान्वयवाद

कुमारिल का मत है कि वाक्य में प्रत्येक पद का पृथक्-पृथक् अभिधान होता है। इन अर्थों को योग्यता, आकांक्षा तथा संनिधि की सहायता से वाक्यार्थ के रूप से जोड़ देते हैं। इस प्रकार वाक्यार्थ और पदार्थ भिन्न तथ्य हैं। वाक्यार्थ को तात्पर्यार्थ भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त को अभिहितान्वयवाद (प्रत्येक शब्द के पृथक्-पृथक् अर्थों का बोध हो जाने पर वाक्य में अन्वय करना) कहा जाता है। वाक्यार्थ के विषय में नैयायिकों की भी यही मान्यता है -

आकाङ्क्षायोग्यतासंनिधिवशाद्द्वक्ष्यमाणस्वरूपाणां पदार्थानां समन्वये तात्पर्यार्थो विशेषवपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः समुल्लसतीत्यभिहितान्वयवादिनां मतम्⁴³

अत्राकाङ्क्षा च योग्यत्वं सन्निधिश्चेति तत् त्रयम्।
वाक्यार्थावगमैः सर्वैः कारणत्वेन कल्प्यते ॥⁴⁴

गौरश्चः पुरुषो हस्तीत्याकाङ्क्षारहितेष्विह।
अन्वयादर्शनात् तावदाकाङ्क्षा परिगृह्यते ॥⁴⁵

अग्निना सिञ्चतीत्यादावयोग्यानामन्वयात्।
योग्यतापि परिग्राह्या सन्निधिस्त्वथ कथ्यते ॥⁴⁶

प्रभाकर केवल वेद की विधियों को ही शब्द-प्रमाण मानते हैं। जैसे-स्वर्गकामो यजेत। अन्य सभी स्थितियों में बोलनेवाले की आप्तता के आधार पर शब्दों के प्रामाण्य का अनुमान होता है। कुमारिल आप्त पुरुषमात्र के शब्दों को शब्द प्रमाण में रखते हैं। कुमारिल भट्ट के अनुसार प्रकृत में उपयोगी होने के कारण जिसे शास्त्र कहा जाता है, वहीं शब्द प्रमाण है। कुमारिल के अनुसार लोक सिद्ध होने के कारण प्रत्यक्ष की तरह उसकी भी परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। नैयायिक शब्द बोध के प्रति ज्ञायमान पर अथवा पद-ज्ञान को कारण मानते हैं। परन्तु भाट्ट मीमांसक पदों के द्वारा पदार्थों का स्मरण होने पर जो वाक्यार्थ ज्ञान होता है, उसे ही शब्द प्रमाण कहते हैं। नारायण भट्ट ने भी इसी का समर्थन किया है। पार्थसारथी मिश्र ने उपर्युक्त कथन में यह भी जोड़ा कि इस प्रमाण के द्वारा जो ज्ञान हो वह 'नवीन' होना चाहिए।

पूर्वमीमांसा में शब्द प्रमाण का अत्यन्त महत्त्व है। पूर्वमीमांसा में यहां तक कहता है कि धर्म प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं है -

⁴¹ काव्यप्रकाश द्वितीय उल्लास सूत्र ७ पर व्याख्या

⁴² मानमेयोदय-शब्दपरीक्षा पृ १३४

⁴³ काव्यप्रकाश द्वितीय उल्लास सूत्र ७ पर व्याख्या

⁴⁴ मानमेयोदय-शब्दपरीक्षा ९४३

⁴⁵ मानमेयोदय-शब्दपरीक्षा ९५३

⁴⁶ मानमेयोदय-शब्दपरीक्षा ९६३

तत्प्रत्यक्षमनिमित्तं विद्यमानोपलम्भनत्वात्।⁴⁷ यह तो स्पष्ट ही है कि परोपकार करने से हमें भविष्य में सुख प्राप्त होगा, इसका कहां प्रत्यक्ष है ? अनुमान से भी हम इस निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुंच सकते। सो वेद का स्वतः शब्द प्रमाण, अर्थात् जिसको किसी और वचन से अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है,। पूर्वमीमांसा दर्शन ने अदृष्ट धर्म की परिकल्पना मस्तिष्क में उत्पन्न की, उसके फल, उसके लिए कर्म, सब का मनुष्यमात्र के लिए वर्णन किया। मीमांसकों ने शब्द को नित्य (eternal) माना है। इसकी न तो उत्पत्ति होती है न ही विनाश। शब्द का अस्तित्व अनादिकाल से है। दूसरी ओर नैयायिकों के मत में शब्द को अनित्य (non-eternal) माना गया है, अर्थात् इसकी उत्पत्ति और विनाश होता है।

1.7 उत्तरमीमांसा (अद्वैत वेदान्त) दर्शन में शब्द प्रमाण

1.7.1 वेदान्तदर्शन में शब्द प्रमाण का स्वरूप एवं भेद

जिस वाक्य के तात्पर्य का विषयरूप संसर्ग, अन्य प्रमाणों के द्वारा बाधित न हो, तो ऐसा वाक्य प्रमाण माना जाता है। वाक्यजन्य ज्ञान में आकांक्षा, योग्यता आसत्ति (सन्निधि) और तात्पर्य- ये चार कारण माने जाते हैं। हर एक वाक्य का अपना तात्पर्य होता है। पदार्थों के संसर्ग-सम्बन्ध को बोध कराना तात्पर्य का कार्य है और वह संसर्गबोध यदि किसी अन्य प्रमाण से बाधित न होता हो, तो वह वाक्य प्रमाण माना जाता है। 'गामानय' इस वाक्यश्रवण के बाद, - श्रवणप्रत्यक्ष के बाद- "गाय को लाओ" - ऐसा जो अर्थज्ञान होता है, वही शाब्दी प्रमाण है। इस शाब्दी प्रमाण का कारण वाक्य है (श्रोत्र नहीं)। पदार्थ का बोध अवान्तर व्यापार है, और प्रत्येक पद का अपने अपने अर्थ में पूर्व से हुआ शक्तिग्रह सहकारी कारण माने गए हैं। इस सबके रहते जो शब्दज्ञान होता है, उसे 'शाब्दी प्रमाण' कहा जाता है -

यस्य वाक्यस्य तात्पर्यविषयीभूतसंसर्गो मानान्तरेण न बाध्यते तद्वाक्यं प्रमाणम्।
वाक्यजन्यज्ञाने च आकांक्षायोग्यताऽऽसत्तयस्तात्पर्यज्ञानं च इति चत्वारि कारणानि।

1.7.2 शाब्दबोध के चार सहकारी कारण

शाब्दबोध के चार सहकारी कारण - आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति (सन्निधि) और तात्पर्य हैं। उनमें से क्रमशः हर एक का स्पष्टीकरण किया जा रहा है -

1. आकांक्षा

तत्र पदार्थानां परस्परजिज्ञासाविषयत्वयोग्यत्वमाकांक्षा। क्रियाश्रवणे कारकस्य कारकश्रवणे क्रियायाः करणश्रवणे इतिकर्तव्यतायाश्च जिज्ञासाविषयत्वात् ऽजिज्ञासोरपि वाक्यार्थबोधात्' योग्यत्व मुपात्तम्। पहले आकांक्षा का स्वरूप और आवश्यकता को बताया जाता है। पदों के श्रवण से पदार्थ का बोध होता है। किन्तु इन पदार्थों में एक-दूसरे के प्रति जिज्ञासा विषय की योग्यता रहती है। इसी को यहाँ पर 'आकांक्षा' का नाम दिया गया है। जैसे 'गामानय' - 'गाय को लाओ' इस वाक्य के पहले 'गाय को' यह पद सुना, गाय को द्वितीया विभक्ति-कर्म विभक्ति का, अर्थज्ञान हुआ, अब जिज्ञासा होती है गाय को क्या करें? दोहें, बाँधें? लाएँ ? इसी प्रकार 'आनय' - 'लाओ'

पद को भी सुना, इतिकर्तव्यता का अर्थबोध हुआ, आज्ञार्थ-मध्ययम पुरुष एकवचन है, यहाँ जिज्ञासा होती है किसको क्या लाना है? तो इन दोनों पदार्थों में परस्पर के लिए जो जिज्ञासा का विषयत्व है, वही है 'आकांक्षा'।

2. योग्यता-

योग्यता तात्पर्यविषयसंसर्गाबाधः। वह्निना सिञ्चति इत्यादौ तादृशसंसर्गाबाधान्न योग्यता। स प्रजापतिरात्मनोवपामुदखिदत् इत्यादावपि तात्पर्यविषयीभूतपशुप्राशस्त्याबाधात्योग्यता। जहाँ पर वाक्य के तात्पर्य विषयभूत जो सम्बन्ध का अन्य प्रमाण से बाध न होता हो, तो वहाँ वाक्यार्थबोध करने की योग्यता है। यह योग्यता की व्याख्या है। उदाहरणार्थ 'गामानय' – इस वाक्य में योग्यता विद्यमान है, क्योंकि 'गोकर्मक' 'आनय' – क्रियारूप - इस वाक्य का तात्पर्य, विषयभूतसंसर्ग, किसी भी प्रमाण से बाधित नहीं है। सावयव तथा परिच्छिन्न होने से आनमनक्रिया के साथ, कर्मत्वरूप से गो का सम्बन्ध संभव ही है। इसलिए इसका बाध कोई भी नहीं कर सकता। परन्तु 'अग्निना सिञ्चति' इस वाक्य का वह्निकरणक सेचन क्रियारूप तात्पर्य विषयीभूतसंसर्ग तो प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है। कहीं भी कोई भी आग से गीला होता हुआ देखा-सुना नहीं गया है। आग से तो गीलेपन का शोष ही होता है।

इसलिए वह्निकरणक सेचन क्रिया का प्रत्यक्ष से बाध हो जाने से 'वह्निना सिञ्चति'- आदि वाक्य में योग्यता नहीं मानी जाती। 'स प्रजापतिरात्मनो यथामुदखिदत्'—“उस प्रजापति ने अपनी वपा (चरबी) खरोच डाली” – आदि वाक्यों में पशुयाग की प्रशंसा अर्थवाद से की गई है। यहाँ अपनी वपा को खरोच डालना तो प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध बात है। वह प्रत्यक्षप्रमाणबाधित है। दूसरे की वपा को तो कोई खरोच सकता है, पर अपनी वपा को खरोचना तो कभी देखा नहीं गया। इसलिए यह वाक्य अप्रमाणिक है। तो ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि इस वाक्य का तात्पर्य, विषयीभूत संसर्ग- चरबी-के खरोचने में नहीं है। किन्तु पशुयाग की प्रशंसा में है। इसका मतलब यह है कि पशुयाग इतना श्रेष्ठ है कि जिसकी सिद्धि के लिए प्रजापति ने भी खुद अपनी वपा- चरबी— का उल्टात किया था। इस प्रकार प्रशंसा बताकर पाशुयाग करने की आवश्यकता पर जोर दिया है। यहाँ यह याद रखने की जरूरत है कि योग्यता के होते हुए भी यदि वह ज्ञापमान नहीं है तो ऐसी अज्ञात योग्यता वाक्यार्थबोध में कारण हो नहीं सकती। अतः ज्ञायमान योग्यता ही वाक्यजन्यज्ञान में सहकारिकारण है। अज्ञात-अकेली-विद्यमान योग्यता नहीं।

3. आसत्ति (सन्निधि)-

आसत्तिश्चाव्यवधानेन पदजन्यपदार्थोपस्थितिः।

अव्यवहित रूप से पदजन्य पदार्थों की जहाँ उपस्थिति होती है, वह 'आसत्ति' है। आसत्ति का लक्षण देते हैं – व्यवधानरहित पदजन्य पदार्थों की उपस्थिति को आसत्ति कहते हैं। पदजन्य पदार्थों की उपस्थिति से आशय है - अन्य प्रमाणों के द्वारा उपस्थापित पदार्थ का वाक्यार्थबोध में अन्वय नहीं होता। उदाहरण - 'ओदनं पश्य' – 'भात को देखो', और 'चन्द्रं भुंक्ष्व' – 'चन्द्र को खाओ'- इन दोनों वाक्यों में प्रत्येक में दोनों पदों की उपस्थिति अव्यवहितरूप से बनी ही रही है।

4. तात्पर्य - तत्प्रतीतिजननयोग्यत्वं तात्पर्यम्⁴⁸

अर्थात् पदार्थों के संसर्ग की प्रतीति उत्पन्न करने की योग्यता का नाम तात्पर्य है। जैसे गेहे घटः-घर में घड़ा है, इस वाक्य में गेह आधार है और घट आधेय है। इन दोनों का आधाराधेयभाव सम्बन्ध बतलाना इष्ट है और ऐसे सम्बन्ध की प्रतीति कराने की योग्यता इस वाक्य में है। इसलिये इस वाक्य को सुनते ही गेह और घट के आधाराधेयभाव सम्बन्ध का बोध श्रोता को हो जाता है। इसलिये चाहे अर्थज्ञानशून्य व्यक्ति भी वेदमन्त्र का उच्चारण करे फिर भी उस मन्त्र में पदार्थों के संसर्गजनन योग्यता रूप तात्पर्य के होने से श्रोता को शाब्द बोध हो जाता है। अव्युत्पन्न अध्यापक के द्वारा उच्चारण किये गये वाक्य में भी विवक्षित पदार्थ के संसर्ग की प्रतीति जनन योग्यता विद्यमान रहने के कारण ही व्युत्पन्न छात्र एवं तटस्थ व्यक्ति को शाब्दबोध हो जाता है। जो ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते उनको भी उक्त योग्यता के कारण ही शाब्दबोध होता है, क्योंकि वह योग्यता रूप तात्पर्य शब्द में रहने वाला धर्म है। वह तात्पर्य वक्ता के अधीन नहीं है जैसा कि न्याय ने स्वीकार किया है- वक्तुरिच्छा तात्पर्यम्। इसलिये जो वाक्य जिस पदार्थ के संसर्गप्रतीतिजनन में समर्थ है वह वाक्य तत्परक होता है। अर्थात् उस वाक्य से उसी अर्थ का बोध होता है। उससे अन्य का नहीं। जैसे 'गेहे घटः' यह वाक्य गेह और घट के संसर्गबोधन में समर्थ है गेह और घट के संसर्गबोधक में नहीं।

1.7.3 अद्वैतवेदान्त में वेद का प्रामाण्य

भारतीय दर्शन वेद की प्रामाणिकता प्रायः सभी आस्तिक सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं। परन्तु न्याय एवं मीमांसा में वेद के नित्यत्व एवं प्रामाण्य को लेकर अधिक चिन्तन हुआ है। अतः अद्वैत वेदान्त में वेद के नित्यत्व एवं प्रामाण्य को लेकर न्याय एवं मीमांसा में भेद है। वेदान्तपरिभाषा ग्रन्थ में इस विषय पर चर्चा हुई है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार नैयायिकों का यह कहना है कि, नित्य, सर्वज्ञ परमेश्वर के द्वारा प्रणीत होने से वेद में प्रामाण्य है मीमांसकों का कहना यह है कि वेद नित्य हैं, और पुरुषदोषों से रहित हैं, इसलिए वेदों का प्रामाण्य है -

तत्र वेदानां नित्यसर्वज्ञपरमेश्वरप्रणीतत्वेन प्रामाण्यमिति - नैयायिकाः। वेदानां नित्यत्वेन निरस्तसमस्तपुंदूषणतया प्रामाण्यमिथ्यध्वरमीमांसकाः।⁴⁹

अद्वैत वेदान्त के अनुसार पौरुषेयत्व का अर्थ कर देने से सृष्टि के आरम्भकाल में परमेश्वर ने पूर्वकाल में (सृष्टि के आरंभ के पूर्वकाल में) सिद्ध वेदों के समान आनुपूर्वी-क्रमसहित बनाया। उनसे विजातीय-विपरीत-क्रमवाले वेदों को नहीं। इसलिए सजातीय-समान-क्रमवाले उच्चारण की अपेक्षा किए बिना उच्चारण करने वाला पौरुषेयत्व तो वेदों में नहीं है। इसके विपरीत भारत आदि लौकिक ग्रंथों का उच्चारण तो सजातीय-क्रमसहित-उच्चारण की अपेक्षा किए बिना ही (सजातीयोच्चारण की परवाह किए बिना ही) हुआ है। इसलिए उनमें 'पौरुषेयत्व' हैं। इस तरह पौरुषेय और अपौरुषेय के भेद से आगम को दो प्रकार बतला दिए हैं।

तथा च सर्गाद्यकाले परमेश्वरः पूर्वसर्गसिद्धवेदानुपूर्वीसमानानुपूर्वीकं वेदं विरचितवान् न तु तद्विजातीयं वेदमिति न सजातीयोच्चारण - अनपेक्षोच्चारणविषयत्वं पौरुषेयत्वं

⁴⁸ वेदान्त परिभाषा आगम परिच्छेद पृ १२३

⁴⁹ वेदान्तपरिभाषा आगमपरिच्छेद पृ ० १४५

वेदस्य। भारतादीनान्तु सजातीयोच्चारणमनपेक्ष्यैवोच्चारणमिति तेषां पौरुषेयत्वम्। एवं पौरुषेयापौरुषेयभेदेन द्विविध आगमो निरूपितः।⁵⁰

1.8 शब्द प्रमाण की प्रामाणिकता

शब्द प्रमाण कितना प्रामाणिक है ? इस प्रश्न के समाधान को न्यायदर्शन एवं मीमांसा दर्शन में पर्याप्त चर्चा हुई है। पहले न्यायदर्शन में शब्द प्रमाण का प्रामाण्य देखते हैं –

1.8.1 न्यायदर्शन में शब्द प्रमाण का प्रामाण्य

पूर्वपक्ष :- तदप्रामाण्यामनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः।⁵¹

अर्थात् शब्द प्रमाण अप्रामाणिक है क्योंकि उसमें झूठ, परस्पर विरोध और पुनरुक्ति के दोष होते हैं।

सिद्धान्तपक्ष - सिद्धान्ती एक-एक करके उत्तर देते हैं –

न, कर्मकर्तृसाधनवैगुण्यात्।⁵²

अर्थात् जो बात प्रामाणिक है, उसके करने में या उसके कर्ता में अथवा उसके करने के साधन में यदि कोई दोष हुआ, तो वह गलत हो जाती है। इसमें शब्द का कोई दोष नहीं है। जैसे ऊपर दिए आइन्स्टाइन के उदाहरण में, यदि उसकी कही बात को प्रमाणित करने वाले गलत प्रकार से माप लेते, अथवा स्वयं विषय के बारे में कम जानते अथवा उनके साधन दोषपूर्ण होते, तो वे आइन्स्टाइन सही नहीं कह रहा, इस निष्कर्ष पर पहुंचते। वास्तव में, कमी आप्त-वचन की नहीं, अपितु उनके प्रयोग की होती।

अभ्युपेत्य कालभेदे दोषवचनात्।⁵³

दूसरे, वचन-व्याघात इस परिस्थिति में उत्पन्न हो सकता है, जब वचन मान कर, फिर सही समय पर क्रिया को न करने पर, वचन के क्रियान्वन में दोष आता है। जैसे किसी वैज्ञानिक के वचन का सूर्यग्रहण के समय परीक्षण आवश्यक था। अब यदि सूर्यग्रहण को छोड़ कर किसी अन्य समय पर प्रयोग किया जाए, तो वह वचन को सिद्ध करने में असमर्थ ही होगा। मेरे अनुसार, यहां यह समझ लेना चाहिए कि प्रयोग के अन्य दोषों के कारण भी विरोध पाया जा सकता है, केवल कालभेद ही नहीं।

अनुवादोपपत्तेश्च।⁵⁴

तीसरे, पुनरुक्ति का दोष इसलिए नहीं होता क्योंकि वचन की आवृत्ति अनुवाद के लिए होती है, अर्थात् सकारण होती है, निरर्थक नहीं। जैसे, आइन्स्टाइन ने एक समीकरण को दूसरे स्थान पर इस लिए पुनः कहा क्योंकि वहां पर उनको उससे एक अन्य सिद्धान्त उपपादित करना था। इस प्रकार, जहां ये दोष साधारण मनुष्यों के वचनों में अवश्य पाए जा सकते हैं, आप्त वचनों में ये

⁵⁰वेदान्तपरिभाषा आगमपरिच्छेद पृ० १४५

⁵¹न्यायसूत्र २।१।५८

⁵²न्यायसूत्र २।१।५९

⁵³न्यायसूत्र २।१।६०

⁵⁴न्यायसूत्र २।१।६१

दोष नहीं होते। इसीलिए वे सर्वमान्य होते हैं।

1.8.2 मीमांसा दर्शन के अनुसार शब्द प्रमाण की प्रामाणिकता

मीमांसादर्शन में शब्द प्रमाण की प्रामाणिकता को पाँचवे जैमिनि सूत्र में स्पष्ट किया गया है -

औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे
तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्⁵⁵

अध्याहार्यः – वेदानाम्, मतः

अनुवृत्तिः – धर्मः

एकवाक्यता – नित्यः (111118तः)

अर्थात् वेदों के शब्द और अर्थ का सम्बन्ध उत्पत्ति से सम्बद्ध है। उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान उपदेश कहाता है और वह कभी असत्य अथवा व्यभिचारी नहीं होता। बादरायण ऋषि (जैमिनि के समकालीन अन्य दर्शनाचार्य) मानते हैं (जिसे जैमिनि भी पुरस्सर कर रहे हैं) कि यह प्रमाण उस अर्थ का प्रमाण होता है जो प्रत्यक्ष (या अनुमान से) उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि इस प्रमाण में अर्थ के उपलब्ध होने की अपेक्षा नहीं है।

इस वाक्य में 'औत्पत्तिकः' का 'मानव सृष्टि की उत्पत्ति' अर्थात् 'नित्यता' अर्थ है, जो कि 111118 सूत्र से अनुवर्तित है। यह सिद्धान्तपक्ष का प्रतिपादन हुआ। अब प्रतिपक्षी विभिन्न युक्तियों से इसका खण्डन करने की चेष्टा करता है, जिनमें से कुछ युक्तियाँ हमारे सन्देहों को भी निरूपित कर सकती हैं ! क्रमवार ये युक्तियाँ और इनके उत्तर इस प्रकार हैं

शब्द तो तभी सुना जाता है जब उसका उच्चारण किया जाता है। जब उसके लिए कर्म करना पड़ता है, तो वह नित्य कैसे हो सकता है ? इसपर जैमिनि समझाते हैं कि शब्द के नित्यता पक्ष में भी उसकी अभिव्यक्ति के लिए कर्म अपेक्षित है। ऐसा नहीं है कि सब शब्द नित्य होने से सर्वदा इन्द्रियों के विषय बने रहते हैं। उनको व्यक्त करने के लिए प्रयत्न करना ही पड़ता है। इसलिए यह तर्क कुछ भी प्रामाणित नहीं करता।

यदि शब्द नित्य होता तो वह सदा उपस्थित रहता, परन्तु वह तो उच्चारण के बाद समाप्त हो जाता है। जैमिनि कहते हैं कि शब्द जो इन्द्रियों का विषय है, वह अवश्य ही अग्राह्य हो जाता है।

उपर्युक्त दो सूत्रों में अर्थापत्ति से यह निष्कर्ष निकलता है कि शब्द दो प्रकार के होते हैं – एक जिसका श्रोत्रेन्द्रिय से ग्रहण होता है और एक जो बुद्धि में, ग्रन्थों में स्थित होता है। पहला शब्द दूसरे शब्द की अभिव्यक्ति मात्र होता है और अनित्य होता है। यह तथ्य कहीं भी स्पष्टतया नहीं कहा गया है। इसीलिए सबको इस प्रकरण को समझने में कठिनाई होती है। इस बात को समझ लेने पर प्रायः सभी सन्देहों का निवारण हो जाता है।

“शब्द करता है”, इस सामान्य प्रयोग से भी यही जाना जाता है कि शब्द कर्म है, और इसलिए अनित्य है। यह संशय तो उपर्युक्त दो संशयों के समान ही है, तथापि जैमिनि बताते हैं कि कथित वाक्य से केवल प्रयोग इंगित किया जाता है, उसकी नित्य या अनित्य सत्ता नहीं।

⁵⁵ पूर्वमीमांसासूत्र १.१.१५

दो और उससे अधिक व्यक्ति एक ही शब्द का एकसाथ प्रयोग कर सकते हैं। यदि शब्द नित्य है, तो उसकी अभिव्यक्ति भी एक समय में एक होनी चाहिए। इससे यही जाना जा सकता है कि एक समान अनेक शब्द उत्पन्न हो रहे हैं अर्थात् शब्द अनित्य है। जैमिनि उत्तर देते हैं – जिस प्रकार सूर्य एक स्थान ही नहीं, अपितु सर्वत्र एकसाथ प्रकाश करता है, उसी प्रकार एक शब्द अनेक स्थान पर उच्चारित होता है।

वस्तुतः, इस तथ्य से तो शब्द की नित्यता ही प्रकाशित होती है, न कि अनित्यता, क्योंकि शब्द का ज्ञान सर्वत्र और सर्वदा विद्यमान होने से, उसे नित्य मानना ही सही है। जैमिनि स्वयं आगे 111119 सूत्र में यह बताते हैं।

पूर्वपक्षी एक और आपत्ति सामने रखता है – शब्दों में प्रकृति व विकृति रूप देखे जाने से भी शब्द को नित्य नहीं माना जा सकता। सन्धि, समास, आदि, में शब्दों के पूर्वरूप में परिवर्तन आ जाता है, जैसे 'सत् + जन' मिलकर 'सज्जन' बन जाता है। यह आपत्ति अनेकों ग्रन्थों में देखने को मिलती है, जैसे न्यायदर्शना प्रतीत होता है कि यह अकाट्य युक्ति है। तथापि जो आगे जैमिनि कहते हैं, वही अन्यों ने भी कहा है कि – यहां दूसरा वर्ण आकर बैठ जाता है, पूर्व वर्ण का विकार नहीं होता।

हमारे मुख, ओष्ठ, आदि, उच्चारण-तन्त्रों की बनावट के कारण, कुछ वर्णसमूह बोलने में कठिन होते हैं, कुछ असम्भव ही। जैसे – कन्प का उच्चारण कठिन है, परन्तु कम्प का सरल; और ज्म का असम्भवप्राय है। प्रयोग की सुविधा के लिए वर्णों में अन्तर कर दिया जाता है, नहीं तो शब्द तो वही रहते हैं और उनके अर्थ भी।

अन्त में पूर्वपक्षी कहता है – शब्द में वृद्धि भी होती है जब बहुत जन उसको एकसाथ उच्चारते हैं। यहां 'शब्द' से 'ध्वनि' का ग्रहण किया गया है, जो भी 'शब्द' का एक अर्थ है। जैमिनि बताते हैं – यह नाद में वृद्धि है, शब्द में नहीं।

पुनः यहां हम प्रयोग और निराकार शब्द की सत्ता में भ्रान्ति पाते हैं। इसलिए इस भ्रान्ति का अपने मन से पूर्णतया निवारण करना हमारे लिए भी बहुत आवश्यक है।

पूर्वपक्षियों के सब सन्देह दूर करने के बाद, जैमिनि अब शब्द के नित्य होने में निश्चयात्मक युक्तियां प्रस्तुत करते हैं। इनको गहनता से समझना अत्यावश्यक है –

शब्द नित्य ही हैं क्योंकि उनके अर्थ दूसरों के लिए हैं। जो श्रोता या पाठक है, उसके लिए शब्द बोले या लिखे जाते हैं। यदि शब्द का अर्थ से सम्बन्ध पूर्व से वर्तमान न हो, तो शब्द किस प्रयोजन के रहेंगे ? जो एक व्यक्ति बोलेगा वह दूसरा समझ नहीं पाएगा !

परन्तु यह युक्ति तो दूसरी मानवीय भाषाओं पर भी प्रयुक्त होती है, जो कि स्पष्टतः आज हैं, कल नहीं। जैसे एक समय में पालि भाषा का बोलबाला था, आज वह कहीं भी नहीं बोली जाती। इस सन्देह का उत्तर यह है कि वेदों के विषय में सब जानते हैं कि वे पुरातन काल से वर्तमान हैं। यदि उनकी भाषा अनित्य होती, तो उसके शब्दों का अर्थों से सम्बन्ध बहुत पहले ही समाप्त हो जाता, क्योंकि अनेकों वैदिक शब्दों का प्रयोग बहुत पहले समाप्त हो गया है। जिस प्रकार सिन्धु घाटी की सभ्यता के शब्द प्रयोग के अभाव में अब नहीं समझे जाते, उसी प्रकार वैदिक शब्दों का भी लोप हो जाना चाहिए था।

फिर, ये शब्द एकसाथ सब व्यक्तियों में और सर्वदा जाने जाते हैं। जैसा हमने ऊपर देखा था, यह

तथ्य शब्द की अनित्यता स्थापित नहीं करता, अपितु उसका उल्टा स्थापित करता है, कि – शब्द व्यापक हैं व देश और काल में सीमित नहीं हैं।

जो हम कहें कि अन्य भाषाओं के लिए भी यह बात सही है, तो ऊपर दिया उत्तर यहां भी ग्रहण करना चाहिए।

व्याख्याकार इसका एक अन्य अर्थ भी करते हैं कि एक शब्द अपने सभी विषयों में एकसाथ व्यवहृत होता है, जैसे – ‘गो’ शब्द से सभी गायों का ज्ञान हो जाता है। पहले तो यह कथन सही नहीं है क्योंकि जब हम कहते हैं, “यह गाय”, तब हम एक गाय का बोध कराते हैं; तथापि यह सही है कि ‘गो’ शब्द किसी व्यक्तिविशेष को नहीं कहता, अपितु गोजाति को कहता है, और गोजाति यदि नहीं भी रहे, तब भी उसका बोध कराता रहता है। फिर भी, इस तथ्य को मानने से शब्द नित्य नहीं हो जाता ! इसलिए मुझे यह व्याख्या त्याज्य लगती है।

पुनः, जैमिनि कहते हैं कि शब्दों के प्रयोग की कोई निर्धारित संख्या नहीं है। इसलिए भी वे नित्य हैं। यह तो पूर्व कथन का कुछ भेद लगता है ! इसलिए इसको ऐसे समझना चाहिए – वैदिक शब्दों का प्रयोग कितनी भी बार हो, वे अपना अर्थ नहीं त्यागते। परमात्मा के ज्ञान के समान, वे सदा एक ही अर्थ को कहते हैं।

और तो और, वैदिक शब्दों को प्रयोग की अपेक्षा ही नहीं है ! हम पाते हैं कि जनजातियों की भाषाएं लुप्त हो जाती हैं, क्योंकि उनका प्रयोग बन्द हो जाता है। जैमिनि बताते हैं कि वेदों के साथ कभी यह सम्भव नहीं है। चाहे कोई वह भाषा बोले या न, उस भाषा का अस्तित्व बना रहेगा। आज के परिपेक्ष में भी हम कह सकते हैं कि कोई मानव वैदिक भाषा नहीं बोलता, तथापि वेदों का ज्ञान, कुछ सीमित मात्रा में ही सही, अभी भी वर्तमान है। और, इससे भी महत्त्वपूर्ण है कि कोई परिश्रम करे तो उस ज्ञान को पुनरुज्जीवित कर सकता है, जैसे महर्षि दयानन्द ने लुप्त वैदिक ज्ञान का पुनरुद्धार किया।

वैदिक शब्दों का अर्थ से जुड़ने का कोई वर्णन नहीं प्राप्त होता, इसलिए ये नित्य हैं। परम्परा से हमें कहीं भी शब्दों की उत्पत्ति का कोई प्रमाण नहीं मिलता, जैसे कि हम आधुनिक भाषाओं की उत्पत्ति के विषय में अनुमान कर पाते हैं। अपितु हमें यही सुनने में आता है कि वेद जैसे-के-तैसे प्रकट हुए। इस प्रकार शब्दों का अर्थों के साथ संयोग न होने से, उनमें संयोग के कारण कार्यता का दोष नहीं आता। दर्शनशास्त्र हमें सदा बताते हैं कि कोई भी संयुक्त वस्तु कार्य वस्तु होगी, कारण नहीं हो सकती; और कार्य कभी नित्य नहीं होता। इसलिए शब्द व अर्थ के सम्बन्ध के संयोग की सम्भावना को दूर करना आवश्यक है।

व्याख्याकारों ने यहां वायु के संयोग-वियोग द्वारा शब्द की उत्पत्ति होने से शब्द के कार्य होने के संशय का निराकरण माना है। यहां मुझे अनेक दोष दीखते हैं – वायु का यहां कोई कथन नहीं है। सभी संशय जैमिनि ने स्पष्टतया पहले ही निरूपित कर दिए थे और उनका एक-एक करके निराकरण कर दिया था। इसलिए यहां किसी संशय की कल्पना करना कोरी कल्पना ही है ! फिर शब्द की अभिव्यक्ति में प्रयत्न का विषय पूर्व ही छेड़ दिया गया था और उसका उत्तर भी दे दिया गया था। इस व्याख्या में पुनरुक्ति ही है, कोई नई बात नहीं है। इन सब कारणों से मेरी उपर्युक्त व्याख्या, जिसमें कोई बाहर से शब्द नहीं जोड़े गए हैं, वह सही लगती है। वैदिक शब्दों की नित्यता में वह एक प्रभावी कारण भी दर्शाती है।

जैमिनि फिर कहते हैं कि वैदिक शब्द नित्य हैं क्योंकि इसका चिह्न भी दीखता है। वेदों में

परमात्मा से वेदों की उत्पत्ति के कथन को वह चिह्न माना गया है जिसकी यहां चर्चा हो रही है। परन्तु जब वैदिक शब्दों पर ही शंका करी जा रही है, तब हम उनका प्रमाण कैसे स्वीकारें ? यह तो अन्योऽन्याश्रय दोष हो जाएगा ! इसलिए, मेरे अनुसार यहां अर्थ है – हम यह भी देखते हैं कि कोई वेदों के लेखक होने का दावा नहीं करता। रामायण, महाभारत, आदि, सभी प्राचीन ग्रन्थों से किसी लेखक का नाम जुड़ा होता है। वेदों में ऐसा नहीं है। यह एक चिह्न है कि वेद अपौरुषेय हैं, और इसलिए नित्य हैं।

इस प्रकार मीमांसा दर्शन में शब्द की प्रामाणिकता को सिद्ध किया गया है।

1.9 सारांश

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में हमने शब्द प्रमाण का सांगोपांग अध्ययन किया। शब्द प्रमाण को स्वतन्त्र प्रमाण मानने के विषय में जहाँ एक और जैन, सांख्य, योग, न्याय, मीमांसा और वेदान्त दर्शन शब्द को स्वतन्त्र प्रमाण स्वीकार करते हैं वहीं दूसरी ओर चार्वाक, वैशेषिक और बौद्ध शब्द प्रमाण को स्वीकार नहीं करते हैं। जैनाचार्यों ने श्रुतज्ञान को प्रमाण न मानने वाले चार्वाक, बौद्ध आदि दार्शनिकों का खण्डन किया है। उनका कहना है कि इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ प्रत्यक्ष ज्ञान जैसे अपने और अपने विषय के जानने में संवादी होने के कारण भी प्रमाण रूप माना जाता है। उसी प्रकार स्व और अर्थ के जानने में सम्वादी होने के कारण श्रुतज्ञान भी प्रमाण रूप है। श्रुति से प्राप्त आप्तश्रुति है और आप्तश्रुति ही आप्तवचन या शब्दप्रमाण है। इसका तात्पर्य है कि श्रुतिवचनों को सांख्यदर्शन में शब्द प्रमाण माना गया है। श्रुति से प्राप्त आप्तश्रुति है और आप्तश्रुति ही आप्तवचन या शब्दप्रमाण है। इसका तात्पर्य है कि श्रुतिवचनों को सांख्यदर्शन में शब्द प्रमाण माना गया है। अपने बोध का सम्प्रेषण करने के लिए तत्त्वज्ञानी अर्थात् यथार्थदृष्ट आप्त पुरुषों द्वारा शब्द के माध्यम से जो उपदेश किया जाता है, वह आगम प्रमाण है। आप्त = जो व्यक्ति किसी विषय का जाना-माना ज्ञाता हो, और जो किसी बाह्य प्रभाव से अपने मत को झुठला नहीं सकता, ऐसे आप्त पुरुष के वचन प्रामाणिक होते हैं। और ये वचन दो प्रकार के होते हैं – दृष्ट विषयों से सम्बद्ध और अदृष्ट विषयों से सम्बद्ध। न्यायभाष्यकार वात्स्यायन के अनुसार जिसने यथार्थ वस्तु को देखा हो वह आप्त है चाहे वह ऋषि हो आर्य हो या म्लेच्छ। मीमांसकों के मत में शब्द प्रमाण सभी प्रमाणों की अपेक्षा गुरुत्वपूर्ण है। आप्त वाक्य ही शब्द है। किसी भी वाक्य के अन्तर्गत पदों के अर्थबोध से अनन्तर प्रत्यक्ष के द्वारा अज्ञात अर्थ का ज्ञान होता है, वह शब्द ज्ञान कहा जाता है। अद्वैतवेदान्त के अनुसार जिस वाक्य के तात्पर्य का विषयरूप संसर्ग, अन्य प्रमाणों के द्वारा बाधित न हो, तो ऐसा वाक्य प्रमाण माना जाता है। वाक्यजन्य ज्ञान में आकांक्षा, योग्यता आसत्ति (सन्निधि) और तात्पर्य- ये चार कारण माने जाते हैं।

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **प्रमा** -अनधिगत'— ऐसा विषय जो पूर्व में ज्ञात न हुआ हो। 'अबाधित'—ऐसा विषय जो दूसरे प्रमाण से (उत्तर ज्ञान से) मिथ्या सिद्ध न होने वाला हो अर्थात् बाधित न होने वाला हो। ऐसा विषय जिस ज्ञान है वह 'प्रमा' कहा जाता है।
- **प्रमाण** - पूर्व में अज्ञात एवं अबाधित ज्ञान प्रमा कहलाता है। प्रमा (यथार्थज्ञान) का जो करण (साधन) है वह **प्रमाण** है। प्रमा (यथार्थज्ञान) के करण को प्रमाण कहते हैं।

- **श्रुतज्ञान** -ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम विगमविशेष से श्रवण करना श्रुत कहा है। इनके मत से जो वाच्य अर्थ आप्तवाक्य द्वारा सुना जा चुका है, वह अपने और वाच्यार्थ को जानने वाला आगमज्ञानरूप श्रुतज्ञान है।
- **शब्द** -आप्त व्यक्ति के उपदेश वचन को शब्द प्रमाण कहा जाता है। तत्त्वज्ञानी अर्थात् यथार्थद्रष्टा आप्त पुरुषों द्वारा शब्द के माध्यम से जो उपदेश किया जाता है, वह आगम प्रमाण है।
- **आप्त** -जिसने यथार्थ वस्तु को देखा हो वह आप्त है चाहे वह ऋषि हो आर्य हो या म्लेच्छ। आप्त का अर्थ है- यथार्थवक्ता (जो रागद्वेषादि से भी असत्य न बोले)।
- **वाक्य** -पदों के समूह को वाक्य कहते हैं। जैसे 'गामानय' यह सुबन्त-तिडन्त पदसमूह वाक्य है।
- **पद**- कहते हैं शक्त को, अर्थात् जिसमें शक्ति होती है वह पद है। इस पद से यह अर्थ समझना चाहिए इस प्रकार के ईश्वर के सङ्केत कोशक्ति कहा जाता है।
- **आकांक्षा :- पदस्य पदान्तरव्यतिरेक- प्रयुक्ताऽन्वयाऽननुभावकत्वमाकाङ्क्षा।** एक पद का दूसरे पद के अभाव से जहाँ शाब्दबोध की जनकता नहीं होती है वह आकांक्षा है।
- **योग्यता -अर्थाबाधो योग्यता।** अर्थ का बाधित नहीं होना योग्यता है। इस प्रकार आकांक्षा आदि से रहित वाक्य अप्रमाण होते हैं जैसे वहिना सिञ्चति = आग से सींचता है। यह वाक्य प्रमाण नहीं है, क्योंकि यहाँ योग्यता का अभाव है। अर्थात् आग से सींचने का कार्य नहीं होने से सिंचन-योग्यता का अभाव है, अतः ऐसे वाक्य प्रमाण नहीं होते।
- **सन्निधि -पदानाम- विलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः।** अर्थात् एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ का सम्बन्ध-बाध न होना। पदार्थ का बोध अवान्तर व्यापार है, और प्रत्येक पद का अपने अपने अर्थ में पूर्व से हुआ शक्तिग्रह सहकारी कारण माने गए हैं। इस सबके रहते जो शब्दज्ञान होता है, उसे 'शाब्दी प्रमा' कहा जाता है।
- **तात्पर्य** -पदार्थों के संसर्ग की प्रतीति उत्पन्न करने की योग्यता का नाम तात्पर्य है।

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, चन्द्रधर, भारतीयदर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 2009
2. श्रीवास्तव, सत्यनारायण, पातञ्जलयोगदर्शनम्, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, 2010
3. मिश्र आद्याप्रसाद, सांख्यकारिका, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, 2006
4. शर्मा, उमाशंकर, मीमांसादर्शनम् चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, 2010
5. भार्गव, दयानन्द, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 2009
6. मुसलगांवकर, गजाननशास्त्री, वेदान्तपरिभाषा, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, 2017

1.12 बोध प्रश्न

1. जैन दर्शन में शब्द प्रमाण के स्वरूप की समीक्षा किजिए ?
2. सांख्य एवं योग दर्शन में शब्द प्रमाण का अन्तर स्पष्ट किजिए ?
3. न्याय दर्शन में शब्द प्रमाण एवं वाक्यार्थ ज्ञान का स्वरूप का वर्णन किजिए ?
4. मीमांसा दर्शन में शब्द प्रमाण के अन्तर्गत अभिहितान्वयवाद एवं अन्विताभिधानवाद का का विवेचन किजिए?
5. वेदान्त दर्शन में के अनुसार वाक्यार्थज्ञान के सहकारीकारण – आकांक्षा योग्यता सन्निधि एवं तात्पर्य का ज्ञान पर प्रकाश डालिए ?



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY